International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 201-204

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 201-204
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 09-10-2021
Accepted: 16-12-2021

जया सिंह
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

Corresponding Author:
जया सिंह
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य में शास्त्रप्रमाणकत्वविषयक वाद-प्रतिवाद

जया सिंह

सारांश
अद्वैत वेदान्त के अनुसार अनेकविद्यास्थानों से उपबृंहित, प्रदीप के समान समस्त अर्थ का प्रकाशन करने वाले तथा सर्वज्ञकल्प ऋग्वेदादि शास्त्रों का कारण ब्रह्म है तथा उपरोक्त शास्त्र ही ब्रह्म के यथार्थस्वरूप के अधिगम में प्रमाणभूत हैं। पूर्वमीमांसक इस स्थापना का विरोध करते हैं क्योंकि उनके अनुसार समस्त वैदिक वाक्य विधि या क्रिया के बोधक होते हैं। जिन वैदिक वाक्यों में विधि का प्रतिपादन नहीं होता है वे निरर्थक होते हैं। चूँकि ब्रह्म के प्रतिपादक वेदान्त वाक्यों से नित्यशुद्धबुद्धनिष्क्रिय ब्रहम का बोध कराया जाता है जो कि क्रियाभिन्न है, अतः वेदान्तवाक्य तथा उनसे प्रतिपादित ब्रह्म शास्त्रप्रमाणक नहीं हैं। आचार्य शंकर मीमांसकों के इस आक्षेप का प्रतिवाद करते हैं तथा श्रुतिवाक्यों एवं तर्कों से ब्रह्म के शास्त्रप्रमाणकत्व को स्थापित करते हैं।

मुख्यशब्द- ब्रह्म, मीमांसा, शास्त्रप्रमाण, विधि, वेदान्त, उपनिषद्

प्रस्तावना
मानव सभ्यता के इतिहास में वेदों को ज्ञान का आदि स्रोत स्वीकार किया जाता है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की अन्तर्दृष्टि से अभिव्यंजित तथा संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् रूप से चतुर्धा विभक्त वेदों से ही विश्व का समस्त ज्ञान-विज्ञान निःसृत हुआ है। ज्ञाननिधि वेदों की ज्ञानराशि का चरमोत्कर्ष (पराकाष्ठा) ही वेदान्त है। 'वेदेन वेदस्य वा निर्णीतार्थः वेदान्तः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार वेदप्रतिपाद्य सिद्धान्त ही 'वेदान्त' है। 'वेदानाम् अन्तः इति वेदान्तः' इस व्युत्पत्ति से 'वेदान्त' शब्द का व्यवहार मुख्य रूप से वेदों के अन्तिम भाग उपनिषदों के लिए होता है तथा उपचार से शारीरकसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता इत्यादि के लिए के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। डॉ. राधाकृष्णन ने वेदान्त का मूल उपनिषदों को बताते हुए इसे वेदों का सार कहा है।[1] उनके अनुसार उपनिषदों के वेदान्त कहलाने का मुख्य कारण यह है कि वेद की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य और अभिप्राय उपनिषदों में ही मिलता है।[2] 'काण्डत्रयात्मको वेदः' इस उक्ति के अनुसार वेद के कर्मकाण्ड,

उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड रूप से काण्डत्रय प्रसिद्ध हैं। ज्ञान की विशेष विवेचना करने के कारण वेद का उपनिषद् भाग ज्ञानकाण्ड कहा जाता है। डायसन का मत है कि- 'वेदान्त का प्रयोग वेद के अन्तिम लक्ष्य अर्थ में उपनिषदों पर आधारित उस धार्मिक दार्शनिक मतवाद के लिए होता है जिसे ब्राह्मण धर्म का ज्ञानकाण्ड ठीक ही कहा जा सकता है।[3] बेलवल्कर के अनुसार वेदों में निहित ज्ञानकाण्ड की सम्यक व्याख्या ही वेदान्त नाम से अभिहित साहित्य का परिचायक है।[4] दासगुप्ता का विचार है कि उपनिषद् महानतम बौद्धिक दर्शन का सत्य प्रतीक हैं तथा उपनिषदों का दर्शन ही वेदान्तदर्शन के नाम से प्रचलित है।[5] इस प्रकार वेदान्त वह शास्त्र है जिसमें वेदविहित सर्वोच्च ज्ञान का प्रकाशन हुआ है। वेदान्त दर्शन के तीन प्रस्थान हैं- श्रुति, स्मृति एवं न्याय प्रस्थान। इनमें श्रुतिप्रस्थान उपनिषद्, स्मृतिप्रस्थान गीता तथा न्यायप्रस्थान ब्रह्मसूत्र है। मध्यकाल में इन तीनों पर भाष्य लिखना आचार्यत्व का प्रमाण समझा जाता था। आचार्य शंकर ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य का प्रणयन कर अपना आचार्यत्व प्रतिष्ठित किया है। ब्रह्मसूत्र पर शंकर का भाष्य उनके अद्भुत वैदुष्य का परिचायक है। शंकर ने अपनी प्रच्छन्न आलोचनात्मक तर्कशक्ति तथा सृजनात्मक प्रतिभा से सार्वभौम दर्शन का प्रतिष्ठापन किया है। आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्रभाष्य में मीमांसा दर्शन के वेदापौरुषेयवाद कर्मसिद्धान्त तथा मोक्षसिद्धान्त का श्रुति एवं तर्क के आधार पर निराकरण किया है।

ब्रह्म की शास्त्रप्रमाणिकता विषयक वाद-विवाद

वाद-

1. ब्रह्म शास्त्रप्रमाणक नहीं। 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्' (जै.सू. 2/1) इस वचनानुसार शास्त्र क्रियापरक होता है किन्तु वेदान्त वाक्य क्रियापरक नहीं है, इसलिए अक्रिय होने के कारण वेदान्त वाक्य प्रयोजन रहित है।[6]
2. कर्ता अथवा देवता आदि का प्रकाशनरूप प्रयोजनवान होने से वेदान्त वाक्य क्रिया विधि के अंग हैं अथवा उपासना आदि अन्य क्रियाओं के विधान के लिए हैं।[7]
3. वेदान्त के प्रयोजनभूत सिद्ध वस्तु (ब्रह्म) का प्रतिपादन सम्भव नहीं है, क्योंकि सिद्ध वस्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय है तथा सिद्ध वस्तु के हेयोपादेयरहित होने से उसके प्रतिपादन में कोई पुरुषार्थ भी नहीं है।[8]
4. विधि वाक्यों के साथ सम्बन्ध प्राप्त किए बिना वेदवाक्यों की अर्थवत्ता उपपन्न नहीं होती है। परन्तु सिद्ध वस्तु के स्वरूप में विधि सम्भव नहीं है, क्योंकि विधि क्रियाविषयक होती है।[9]

इसलिए कर्म में अपेक्षिक कर्त्ता तथा देवतादि के स्वरूप का प्रकाशक होने से वेदान्त वाक्य क्रिया विधि के अंग हैं। वेदान्तवाक्यों में उपलब्ध उपासना आदि कर्मपरक हैं। इसलिए सिद्ध ब्रह्म में शास्त्र प्रमाण कत्व सम्भव नहीं है।

प्रतिवाद-

1. ब्रह्म शास्त्रप्रमाण है। सम्पूर्ण वेदान्त वाक्य समन्वित तात्पर्य से सिद्ध वस्तु ब्रह्म का ही बोध कराते हैं। 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाऽद्वितीयम्'[10], 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'[11], 'अथमात्मा ब्रह्म सर्वानभूः'[12], 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्'[13] इत्यादि सभी वेदान्त वाक्य तात्पर्य से ब्रह्म में ही समन्वित हैं।
2. समस्त वेदान्त वाक्यों का ब्रह्म में समन्वय ज्ञात हो जाने पर अन्य कार्यरूप अर्थ की कल्पना युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा करने पर अतिप्रसंग प्रसक्त होगा। वेदान्त वाक्यों में कर्तृप्रतिपादकता अनुपपन्न है, क्योंकि 'तत्केनकं पश्येत' (बृह. 2/4/13) इत्यादि श्रुतियाँ में क्रिया, कारक और फल का निषेध करती है।
3. सिद्ध-वस्तुस्वरूप होने पर भी ब्रह्म प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय नहीं है, क्योंकि 'तत्त्वमसि' इस वेदान्त शास्त्र के बिना ब्रह्मात्मभाव अवगत नहीं होता है।[14] ब्रह्म की हेयोपादेयरहितता भी दोष नहीं है, क्योंकि हेयोपादेयरहित ब्रह्मात्मभाव के अवगत होने से समस्त क्लेशों की निवृत्ति होती है तथा परमपुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।
4. ब्रह्म उपासना विधि का अंग नहीं है। वेदान्त में देवतादि

प्रतिवादक वाक्य उपासनापरक है किन्तु विधिशून्य वेदान्तवाक्य अपने अर्थ का प्रतिपादन करने में सक्षम हैं, अतः वे उपासनापरक नहीं हो सकते। वेदान्तवाक्यों से ब्रह्मात्मैकत्व का ज्ञान हो जाने पर द्वैतज्ञान की पुनः प्रवृत्ति सम्भव नहीं है। अतः वेदान्तवाक्य उपासना विधि का अंग नहीं हो सकता। यद्यपि अर्थवाद आदि वेदवाक्यों की विधि के साथ सम्बन्ध के बिना प्रमाणता दृष्टिगत नहीं होती तथापि इससे ब्रह्मविषयक शास्त्र की प्रमाणता का खण्डन नहीं किया जा सकता है।

वेदान्तवाक्यों का प्रमाण अनुमान के अधीन नहीं है। अतएव उनको अपने प्रामाण्य में किसी दृष्टान्त की अपेक्षा भी नहीं है। अतः सिद्ध होता है कि ब्रह्म शास्त्रप्रमाणक हैं।

वाद- वृत्तिकार उपवर्ष ने स्पष्ट किया है कि यद्यपि 'ब्रह्म' में शास्त्र प्रमाण है, तथापि उपासना विधि के विषय रूप से ही शास्त्र 'ब्रह्म' का बोध कराता है। प्रवृत्ति तथा निवृत्तिरूप प्रयोजनयुक्त शास्त्र जिस प्रकार यूप, आहननीय आदि अलौकिक पदार्थों का विधि के अंगरूप से बोध कराता है, उसी प्रकार ब्रह्म का भी उपासना विधि के विषय रूप से बोध होता है। 'दृष्टो हि तस्यार्थः कर्मवबोधनम्'[15] इत्यादि वेदवाक्य प्रवृत्ति-निवृत्ति के माध्यम से सार्थक होते हैं, उसी प्रकार वेदान्तवाक्यों की भी सार्थकता होती है।

यदि वेदान्त वाक्य विधिपरक हों तो जिस प्रकार स्वर्गादि की कामना वाले पुरुष के लिए अग्निहोत्र आदि साधनों का विधान है, उसी प्रकार अमृतत्व की कामना करने वाले के लिए ब्रह्मज्ञान का विधान किया जाता है। यदि वेदान्ती कहें कि इनमें जिज्ञास्य का भेद है, अतः फल में भी वैलक्षण्य होना चाहिए, तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि कर्मविधि से प्रयुक्त होकर ही ब्रह्म का प्रतिपादन किया जाता है। 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः' (बृह. 2/4/5), 'ब्रह्मवैद ब्रह्मैव भवति' (मुण्डक. 2/2/9), 'आत्मेत्येवोपासीत्' (बृह. 1/4/7) इत्यादि वेदान्त वाक्य ब्रह्म की उपासना से मोक्ष रूप फल प्राप्ति का विधान करते हैं। यदि वेदान्तवाक्य कर्त्तव्यविधि के साथ असम्बद्ध होकर वस्तुमात्र का कथन करने वाले हों तो हानोपादान के असंभव होने से 'सप्तद्वीपा वसुमती' 'राजासौ गच्छति' इत्यादि वाक्यों के समान वेदान्त वाक्य भी प्रयोजनरहित सिद्ध होंगे। ब्रह्मस्वरूप के श्रवणमात्र से श्रोता के संसारित्व भ्रान्ति की निवृत्ति नहीं होती क्योंकि उसमें पूर्व के समान सुख-दुःखादि संसारिधर्म दृष्टिगत होता है। इसलिए 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' (बृह. 2/4/5) इस प्रकार श्रवण के पश्चात् मनन और निदिध्यासन की विधि देखी जाती है। अतः उपासना विधि का विषय होने से ही ब्रह्म की शास्त्र प्रमाणकता है।

प्रतिवाद- ऐसा नहीं है, क्योंकि कर्म और ब्रह्मविद्या के फल में वैलक्षण्य है। कायिक, वाचिक और मानसिक कर्म ही धर्म है। धर्मजिज्ञासा में 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि विधिवाक्यों से जैसे धर्म जिज्ञासा है, उसी प्रकार 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इत्यादि निषेधात्मक वाक्यों से अधर्म भी जिज्ञास्य है। धर्म का फल सुख तथा अधर्म का फल दुःख ब्रह्म से लेकर स्वावरपर्यन्त समस्त प्राणियों में प्रसिद्ध है। कर्मोपासनादि का फल जन्य होने से अनित्य है, किन्तु अनुष्ठेय कर्मफल से विलक्षण मोक्ष नामक ब्रह्मविद्या का फल नित्य है।

यदि ब्रह्म कार्य के अंगरूप से उपदिष्ट हो और उस कार्य से मोक्ष साध्य स्वीकृत किया जाये तो वह अनित्य ही होगा। परन्तु सभी मोक्षवादी स्वीकार करते हैं कि मोक्ष नित्य है। अतः कार्य के अंगरूप से ब्रह्म का उपदेश युक्त नहीं है।[16]

'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'[17], 'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे'[18], 'तत्र का मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः'[19] इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्मज्ञान के अनन्तर मोक्ष का प्रतिपादन करती हुई ब्रह्मज्ञान एवं मोक्ष के मध्य में कार्यान्तर का निषेध करती है। उपासना क्रिया के कर्मत्व का भी ब्रह्म में प्रतिषेध है।

वाद- इन्द्रियादि का अविषय होने से ब्रह्म में शास्त्रप्रमाणकत्व अनुपपन्न है।

प्रतिवाद- यह कथन युक्त नहीं है, क्योंकि शास्त्र तो अविद्या से कल्पित भेद की निवृत्ति के हेतु है। शास्त्र इंदरूप से विषयभूत ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं करता, अपितु ब्रह्म प्रत्यगात्मरूप से अविषय है ऐसा प्रतिपादन करते हुए अविद्याकल्पित ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय के भेद को निवृत्त करता है।[20]

वादी का यह कथन कि कर्तव्य विधि के साथ सम्बन्ध के बिना वेदान्त वाक्य कही हुई वस्तुमात्र 'सप्तद्वीपा वसुमती'

इत्यादि के समान अनर्थक हैं, वह असंगत है। 'रज्जुरियं नायं सर्पः' इस वाक्य से वास्तुमात्र के कथन से भी भयादि की निवृत्तिरूप प्रयोजन दृष्टिगत होता है, अतः इसी भांति वेदान्त वाक्य भी प्रयोजनयुक्त सिद्ध होते हैं।

निष्कर्षत: श्रुत ब्रह्म पुरुष में भी संसारित्व देखने में आता है, वह भी अयुक्त है क्योंकि 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार अवगत ब्रह्मात्मभाव वाले विद्वान् में पूर्व के समान संसारित्व नहीं दिखलाया जा सकता, क्योंकि वेद प्रमाण से जनित ब्रह्मात्मभाव के साथ उसका विरोध है। ब्रह्मात्मभाव का अवबोध हो जाने पर देहात्मबुद्धि की निवृत्ति हो जाती है। अतः आत्मवित् में मिथ्याज्ञाननिमित्तक संसारित्व धर्म की सम्भावना नहीं की जा सकती है। जिसमें पूर्व के समान संसारित्व धर्म दृष्टिगत होता है उसने ब्रह्मात्माभाव का साक्षात्कार ही नहीं किया है। पुनः जो यह कहा गया है कि श्रवणान्तर मनन एवं निदिध्यासन कथन होने से ब्रह्म विधि का अंग है, वह कथन भी युक्त नहीं है, क्योंकि श्रवण के मनन और निदिध्यासन भी ब्रह्मज्ञान के लिए ही हैं। इनका श्रवण से पृथक् प्रयोजन नहीं है। अतः वेदान्त वाक्यों के समन्वय से ब्रह्म स्वतन्त्र शास्त्रप्रमाणक हैं।

सन्दर्भ

1. भारतीय दर्शन, भाग-2, पृष्ठ 368
2. उपनिषदों की भूमिका, पृष्ठ 21
3. Vedanta Philosophy, p.1-2
4. Vedanta Philosophy, part 1, p.10
5. A History of Indian Philosophy, Vol 1, p.30
6. वेदान्तानामानर्थक्यम् अक्रियार्थत्वात्। ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, 1.1.4
7. कर्तृदेवतादिप्रकाशनार्थत्वेन वा क्रियाविधिशेषत्वम्, उपासनादिक्रियान्तरविधानार्थत्वं वा। वही, 1/1/4
8. नहि परिनिष्ठतवस्तुप्रतिपादनं संभवति, प्रत्यक्षादिविषयत्वात्परिनिष्ठतवस्तुतः, तत्प्रतिपादने च हेयोपादेयरहिते पुरुषार्थाभावात्। वही, 1/1/4
9. न च परिनिष्ठते वस्तुस्वरूपे विधिः संभवति क्रियाविषयत्वाद विधेः। वही, 1/1/4
10. छान्दोग्योपनिषद्, 6/2/1
11. ऐतरेयोपनिषद्, 2/1/1/1
12. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/5/9
13. मुण्डकोपनिषद्, 2/2/11
14. न च परिनिष्ठिवस्तुस्वरूपेत्वेऽपि प्रत्यक्षादिविषयत्वं ब्रह्मणः, 'तत्त्वमसि' इति ब्रह्मत्मभावस्य शास्त्रमन्तरेणानवगम्यमानत्वात्। वही, 1/1/4
15. मीमांसासूत्र, 1/1/1
16. अतस्तद् ब्रह्म यस्येयं जिज्ञासा प्रस्तुता, तद्यदि कर्तव्यशेषत्वेनोपदिश्येत, तेन च कर्तव्येन साध्यश्चेन्मोक्षाऽभ्युपगम्यते, अनित्य एव स्यात्। नित्यश्च मोक्षः सर्वमोक्षवादिभिरभ्युपगम्यते, अतो न कर्तव्यशेषत्वेन ब्रह्मोपदेशो युक्तः। ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, 1/1/4
17. मुण्डकोपनिषद्, 3/2/9
18. मुण्डकोपनिषद्, 2/2/8
19. ईशावास्योपनिषद्, 7
20. अविषयत्वे ब्रह्मणः शास्त्रयोनित्वानुपपत्तिरिति चेत्, न, अविद्याकल्पितभेदनिवृत्तिपरत्वाच्छास्त्रस्य। न हि शास्त्रं इदंतया विषयभूतं ब्रह्म प्रतिपिपादयिषति। किं तर्हि? प्रत्यगात्मत्वेनाविषयतया प्रतिपादयदविद्याकल्पितं वेद्यवेदृतिवेदनादिभेदमपनयति। ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, 1/1/4